❐ डॉ सुषमा सिंघवी

भारतीय दर्शनों में आत्मवाद

आत्मा और धर्म एक अर्थ के वाचक हो सकते हैं क्योंकि हमारा स्वभाव ही आत्मा है और वस्तु का स्वभाव ही धर्म। विभाव और विधर्म घातक हैं। विवेक मूलक प्रवृत्ति आत्मा के चैतन्य तथा धर्म के स्वरूप को उजागर करने का सही माध्यम है :- ''विवेगे धम्ममाहिए''।

'समयण्णे, खेत्तण्णे, कालण्णे' – समय-क्षेत्र-काल को समझकर प्रवृत्ति करने के निर्देश आगमों में पदे-पदे प्राप्त होते है। आत्मपरता आवश्यक है क्योंकि निवृत्ति और प्रवृत्ति के विवेक का अधिष्ठान आत्मा है।

''उट्ठिए नो पमायए'' का उद्घोष तथा 'गोयमा! समयं मा पमायए' का आगम उद्धरण तथा 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' इस मंत्र को एकाकार करने का केन्द्र आत्मा की चेतना का पुरुषार्थोन्मुखी होना है तथा आत्मौपम्यभाव का विकास करना है।

'सव्वे जिविउं इच्छइ न मरिज्जिउं' का मनोविज्ञान आत्मा के स्वरूप को समझने का प्रतिबिंब है और इसी का प्रतिफलन है – 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः'।

विश्व के समस्त दर्शन, समस्त नय-निक्षेप-प्रमाण, समस्त युक्ति-श्रुति और अनुभव आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। विभिन्न दर्शनों में प्रतिपादित आत्म-स्वरूप को समझ कर, शास्त्र एवं आप्तवचन के परिप्रेक्ष्य में तर्क तथा विवेक पूर्वक अनुभव तथा अनुभूति की निकष पर मानव धर्म और विभिन्न दर्शन प्ररूपित धर्म को परिभाषित किया जा सकता है। आत्मा और धर्म के एकाकार होने का एक उपाय यह हो सकता है कि स्थानाङ्ग सूत्र के अष्टम स्थान उत्थान पद के अनुशासन पर्व की शिक्षा का सर्वत्र स्वागत हो तथा जीवन में कर्मयोग द्वारा सामाजिक उत्थान की कर्मठता अभिव्यक्त हो।

एक ओर भगवान महावीर के २६०० वें जन्मकल्याणक का यह वर्ष है तथा दूसरी ओर भारत की धरा पर गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, संस्कारहीनता, भ्रष्टाचार, संवेदनहीनता, अमानुषिक दुष्कृत्य तथा प्राकृतिक आपदाओं का अम्बार लग रहा है। क्या हमारी आत्मा, दर्शनों में अन्तर्निहित समस्याओं के समाधान की शिक्षा को अमल में लाने हेतु जाग्रत हो सकेगी? प्रस्तुत शोध पत्र में विमर्श है ऐसी शिक्षा का जो स्वभाव के अनुकूल है, सरल, सुलभ, सुकर है, सार्वजनिक है एवं पक्षपात से रहित है, नियति से बढ़कर पुरुषार्थ के प्रयत्नों को पुरस्कृत करती है, तथा विभिन्न दर्शनों के आगमों द्वारा प्रमाणित है। आइये! ऐसी शिक्षा की अष्टपदी को हम निष्काम भाव से अङ्गीकार करें और कर्मयोगी बन जावें। उत्तराध्ययन की शिक्षा आचरणीय है–

किरियं च रायए धीरे अकिरियं परिवज्जए
दिट्ठीए दिट्ठिसम्पन्ने धर्मं चर सुदुच्चरं।।

अर्थात् व्यक्ति कर्म में रुचि रखे, निष्क्रियता का परित्याग कर, दृष्टि सम्पन्न होकर सम्यकदृष्टि से दुष्कर सद्धर्म का आचरण करे। जब क्रिया और कर्म में निष्काम भाव आ जाए तो कर्म का विष समाप्त हो जाता है और पुरुषार्थ अमृत बन जाता है। अर्जन में विसर्जन का सूत्र वास्तविक स्वामित्व की पहचान है।

यह आत्मा के अस्तित्व की सार्थकता है कि हम स्थानाङ्ग सूत्र के उत्थान पद से उत्थान प्रारम्भ करें। प्राकृत पदों का सार है कि :–

१। हम श्रेष्ठ धर्म को सुनें।
२। श्रेष्ठ धर्म का आचरण करें।
३। संयम की साधना द्वारा नये पापास्रव का निरोध करें।
४। निष्काम तप साधना से बद्ध कर्मों को क्षीण करने में तत्पर हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५। अनाश्रित एवं असहायजनों को आश्रय एवं सहयोग दें।
६। अशिक्षितों को शिक्षित करने में सचेष्ट हों।
७। प्रसन्न भाव से रोगी की सेवा में प्रस्तुत हों।
८। आपस में मतभेद, कलह एवं विग्रह का पारस्परिक सद्भावना से समाधान करें। स्थानाङ्ग सूत्र की इस अष्टपदी में सभी दर्शनों के अध्यात्म का नवनीत है 'पुरिसा! बंध प्पमोक्खो तुज्झत्थमेव' हे पुरुष! बन्धन मुक्ति तेरे पुरुषार्थ पर अवलम्बित है।

बन्धन चाहे अज्ञान और अशिक्षा का हो, अभाव का हो, रोग और शोक का हो, कुसंस्कारों का हो, स्वार्थान्धता का हो, या दुष्टाचरण का ही, इनसे मुक्ति का साधन पुरुषार्थ, सत्पुरुषार्थ है। आत्मा के शुभ और शुद्ध भावों का प्रकटीकरण मिट्टी से सोना बनाने के समान श्रमसाध्य तो है किन्तु संभव है तथा अमूल्य है।

उपनिषदों का अध्यात्म, शंकराचार्य का अद्वैत, पतंजलि का योग, कपिल का प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान, न्याय दर्शन के प्रमाणादि १६ तत्वों का ज्ञान और वैशेषिक दर्शन का सप्त-तत्व-ज्ञान, यह सम्पूर्ण आत्मवाद तभी सार्थक है जब आत्मा/जीव/पुरुष/चैतन्य/चित् की स्वभाव की स्थिति में हो। यही आत्मा से परमात्मा बनने का मार्ग है। इस स्वभाव के प्रकटीकरण का एक सूत्र स्थानाङ्ग सूत्र की अष्टपदी में निहित है और यह सामाजिक, सार्वजनिक और समायनुकूल उपाय है जिसका क्रियान्वयन भगवान् महावीर के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव के अवसर पर अत्यन्त उपयोगी है। हमारी आत्मा का चैतन्य इस अष्टपदी की क्रियान्विति में लग जाये तो आत्मौपम्य-भाव की जागृति से संसार अवश्य निरापद होगा।

जब दर्शन और धर्म आत्मपरक हो जाते है तो वहां हिंसा का स्थान नहीं रहता, वहां करुणा प्रवाहित होने लगती है, वायुमण्डल अमृतमय हो जाता है।

भारतीय संस्कृति के देवी-देवताओं का पशु-पक्षियों के साथ अनन्य सम्बन्ध आत्मौपम्य भाव को दर्शाता है तभी तो भगवान विष्णु का वाहन गरूड़, शिव का वाहन नन्दी वृषभ, गणेश का वाहन मूषक, कार्तिकेय का मोर, लक्ष्मी का उल्लू, सरस्वती का हंस, दुर्गा का सिंह, तथा चौबीस तीर्थंकरों में से १७ तीर्थंकरों के चिन्ह पशु-पक्षी जिनमें वृषभ, हाथी, घोड़ा, बन्दर, हिरण, बकरा, सर्प आदि सम्मिलित हैं। जीव सभी समान हैं। चेतना और आत्मा के स्तर पर समानता का यह दर्शन सृष्टि के प्रत्येक जीव में गुणग्राहकता, तथा संवेदनशीलता और परस्पर सुरक्षा के भाव को जगाता है। विश्व में व्याप्त जीव शोषण, जीवक्रूरता एवं जीव हिंसा के विरोध में संरक्षण, संवेदन और अहिंसा के विस्तार द्वारा एक सार्वभौम जीवन-दृष्टि के प्रसार तथा स्वयं की आत्मा को पहचानने की अन्तर्दृष्टि के विकास में यह शोध पत्र प्रभावी होगा। अमृतचन्द्रसूरि के शब्दों में सभी चेतन स्वधर्मी जीवों के प्रति वात्सल्य का आलम्बन भारतीय दर्शनों में आत्मवाद का प्राण है :–

अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मी निबन्धने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम् ।।

निदेशक :
क्षेत्रीय केन्द्र कोटा खुला विश्वविद्यालय, उदयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org